गुरुकृपा की उदारता

डेविड कैट्ज़ द्वारा वार्ता

गुरुपूर्णिमा के उपलक्ष्य में

श्रीगुरु का अनुग्रह, श्रीगुरु की कृपा। श्रीगुरु का मार्गदर्शन। सद्गुरु का सान्निध्य। गुरुज्ञान। सद्गुरु की करुणा। श्रीगुरु के दर्शन। सद्गुरु का प्रकाश। सद्गुरु का प्रेम। गुरुकृपा की उदारता अतुलनीय है।

शिष्य के जीवन का कायाकल्प हो, इसके लिए सद्गुरु की कृपा अत्यावश्यक है।
कायाकल्प अर्थात् *रूपान्तरण।*

यह समझें कि यह कोई साधारण रूपान्तरण नहीं है। यह वह रूपान्तरण है जो शिष्य को अन्धकार से प्रकाश की ओर ले जाता है, असत्य से सत्य की ओर और मृत्यु से अमरत्व की ओर ले जाता है। जिस किसी ने भी यह समझ लिया है कि यह रूपान्तरण क्या है, जिसे भी इस रूपान्तरण का अनुभव हुआ है, वह अपना शेष जीवन श्रीगुरु के वन्दन-पूजन में बिताएगा। और इसी प्रकार गुरु-शिष्य सम्बन्ध अक्षुण्ण बना रहता है।

रूपान्तरण की इस प्रक्रिया द्वारा हम उस ज्ञान को प्राप्त करते हैं जिससे हम यह अनुभव कर पाते हैं कि यह विश्व, उससे कहीं अधिक जीवन्त और सौन्दर्ययुक्त है, जितना कि केवल मानवीय कल्पना रच सकती। हम उस दिव्य आलोक को प्रत्यक्षरूप में देख पाते हैं जो हमारी सत्ता में और समस्त सृष्टि में व्याप्त है। यह हमें संसार में जीने का एक नया तरीक़ा प्रदान करता है।

जैसे-जैसे यह अद्भुत प्रकाश हमारे जीवन में व्याप्त होता जाता है, उसकी प्रभा से हम आश्चर्य से भर उठते हैं। हमें आश्चर्य होता है कि कैसे यह प्रकाश, हमारे अपने बारे में और इस जगत के बारे में हमारी समझ को बदल देता है। और फिर . . . और फिर . . . और फिर हम . . . *स्वतन्त्र* हो जाते हैं।

विचार करें : “मैं स्वतन्त्र हूँ।”

कल्पना करें : “मैं स्वतन्त्र हूँ।”

महसूस करें : “मैं स्वतन्त्र हूँ।”

स्मरण रखें, आपका मूल स्वभाव है, स्वतन्त्रता। स्वतन्त्रता आपका आधार व आश्रय है। और इस स्वतन्त्रता की खोज करना ही इस जन्म में आपका मूल उद्देश्य है—यही आपके *होने का मूल कारण है।*

इस बारे में सोचें। *स्वतन्त्रता।*

यह नवप्राप्त स्वतन्त्रता, जिसका अनुभव हम इस रूप में करते हैं कि यह मूल रूप से हमारी ही है, श्रीगुरु की करुणा से उदित होती है। श्रीगुरु अज्ञान के आवरणों को चीर देते हैं—उन आवरणों को जो जन्म-जन्मान्तरों से संचित हुए हैं। माया के इन आवरणों का हटना एक रहस्यमयी यात्रा है। और यह गुरु-शिष्य सम्बन्ध में होने वाली अन्तर-प्रक्रिया का सार है। एक शिष्य इस गहन प्रक्रिया के लिए स्वयं को किस प्रकार तैयार करता है व इसे समझता है, यह निर्भर है—अच्छे कर्मों पर, तत्परता पर, मुमुक्षुत्व यानी सत्य के ज्ञान के तीव्र अध्ययन व तीव्र ललक पर। और इस सम्पूर्ण प्रक्रिया के दौरान, पूरी प्रक्रिया के दौरान, श्रीगुरु की कृपा सतत मौजूद रहती है।

जैसे-जैसे यह यात्रा आगे बढ़ती है, शिष्य की सम्पूर्ण सत्ता परिपक्व होती जाती है। उसकी चेतना रूपी भूमि और भी अधिक उपजाऊ होती जाती है। उसमें एक नवीन व और भी अधिक गहन परिपक्वता आने लगती है।

अपने अन्तर व बाह्य जगत के विषय में शिष्य की समझ का परिपक्व होना, श्रीगुरु के प्रसाद का फल होता है, और वह प्रसाद है, दिव्यचक्षु यानी दिव्यदृष्टि प्राप्त होना।

दिव्यचक्षुरूपी यह गुरुप्रसाद हमें एक उपाय प्रदान करता है जिससे हम जगत को नई दृष्टि से देख सकें और उसकी अन्तर्जात बहुमूल्यता की अनुभूति कर सकें।

जैसे-जैसे हम साधना के प्रति स्वयं को समर्पित करते जाते हैं और परमात्मा का ज्ञान पाने के लिए प्रयत्न करते हैं, श्रीगुरु हमारा पोषण व मार्गदर्शन करते जाते हैं ताकि हम इस दिव्यदृष्टि को अपना बना सकें।

कायाकल्प। स्वतन्त्रता। हम श्रीगुरु का वन्दन-पूजन करते हैं।

***

सिद्धयोग पथ पर, जब यह कायाकल्प, यह रूपान्तरण होता है तो हम अपनी स्वतन्त्रता का पुनः अनुभव करते हैं—हमारे हृदय में ऐसा कुछ घटित होता है जो असाधारण होता है। इसे भक्ति कहते हैं। प्रेम का निर्झर फूट पड़ता है।

यह ऐसा प्रेम है जिसके कारण हम अपने उन तरीक़ों को बदलने का प्रयत्न करते हैं जो कल्याणकारी न हों।

यह ऐसा प्रेम है जो हमें प्रेरणा देता है कि हम जो कुछ भी करें उसे और भी अच्छे तरीक़े से करें, और भी बेहतर तरीक़े से करें।

यह ऐसा प्रेम है जो हमें इस बात में प्रवृत्त करता है कि हम वास्तव में जो हैं, उसके प्रति सत्यनिष्ठ बने रहें।

यह ऐसा प्रेम है जो हमें विनम्रता के मार्ग पर ले जाता है, जिसमें हम दूसरों को स्वीकार करते हैं और उनकी भावनाओं व श्रद्धा का सम्मान करते हैं।

यह ऐसा प्रेम है जो हममें यह चाह जगाता है कि हम बस देते रहें . . . देते रहें. . . और *देते ही रहें*. . . यह हममें चाह जगाता है कि श्रीगुरु की सिखावनियों को प्राप्त करने में, हम लोगों की मदद करें ताकि वे सिखावनियाँ उनके जीवन में दृढ़ता से जड़ पकड़ लें—और जिससे बदले में ये लोग आध्यात्मिक समृद्धि की अनुभूति करें। यह है श्रीगुरु की दृष्टि।

गुरुभक्ति वह आधार है जिस पर गुरु-शिष्य का सम्बन्ध आश्रित है। *गुरुभक्ति।*

हम अपने श्रीगुरु का वन्दन-पूजन करते हैं।

भारत में आठवीं शताब्दी में हुए, महात्मा आदि शंकराचार्य ने गुरुभक्ति का उपदेश दिया। वे आत्मज्ञानी महाविभूति थे, आध्यात्मिक गुरु थे जिन्होंने अपने उपदेशों व व्याख्याओं द्वारा वेदों के ज्ञान का सार समझाया। सभी को यह ज्ञान प्रदान करने के लिए, उन्होंने अपने शिष्यों को पूरे भारत की चारों दिशाओं में भेजा—उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में। आज भी साधकगण श्रीशंकराचार्य की सिखावनियों का आदर करते हैं, उनका अध्ययन करते हैं और उनसे लाभान्वित होते हैं।

अपनी रचना, 'गुरोरष्टकम्' में श्रीशंकराचार्य कहते हैं,

भले ही तुम्हें वेद और उनके छः अंग,
शास्त्रों की विद्या आदि कण्ठस्थ हों;
तुममें कवित्व आदि की साहित्यिक प्रतिभा हो
और तुम सुन्दर गद्य व पद्य की रचना करते हो,
परन्तु यदि तुम्हारा मन श्रीगुरु के चरणकमलों में अनुरक्त नहीं है
तो क्या, तो क्या, तो क्या?

इस श्लोक में श्रीशंकराचार्य गुरुभक्ति का महिमागान करते हैं कि गुरुभक्ति होना अनिवार्य है—इस जीवन में सच्ची परितृप्ति पाने के लिए यह अनिवार्य है। अपने मन को "श्रीगुरु के चरणकमलों" पर एकाग्र रखने के रूप में इसे दर्शाया जाता है। भारतीय शास्त्रों में गुरुचरणों को 'चरणकमल' कहा गया है। कमल, परमोच्च आध्यात्मिक ज्ञान का प्रतीक भी है। शास्त्र यह भी कहते हैं कि सद्गुरु के चरण सम्पूर्ण आध्यात्मिक ज्ञान का भण्डार और समस्त आशीर्वादों का स्रोत हैं।*चरण-कमल।*

कायाकल्प। स्वतन्त्रता। गुरुभक्ति। हम अपने श्रीगुरु का वन्दन-पूजन करते हैं।

***

अब मैं आपका ध्यान संस्कृत के एक और सुन्दर शब्द की ओर लाना चाहता हूँ। जब आपको हृदय में अपार भक्ति की अनुभूति हो रही होती है, तब आपकी स्वाभाविक इच्छा क्या होती है?

अर्पण।

अर्पण का अर्थ है, भेंट या उपहार। साथ ही, अर्पित करने या देने का कृत्य भी अर्पण कहलाता है। संस्कृत भाषा में यह शब्द जिस अवधारणा से जुड़ा है, वह है, बदले में कुछ देना—और किसी उद्देश्य से देना। अतः हम अर्पण को इस प्रकार समझ सकते हैं कि यह वह भेंट है जो स्पष्ट उद्देश्य व दृढ़ वचनबद्धता के साथ दी गई हो।

अर्पण, भारत में हरेक पूजा-विधि का अभिन्न अंग है। यह सभी पूजाओं का मूल अंग है और यह हवन व यज्ञों का एक अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भाग है। इन अनुष्ठानों के समय ब्राह्मण पुजारी विभिन्न रूपों में अर्पण करते हैं—पुष्प-अर्पणम् यानी फूलों का अर्पण; फल अर्पणम् यानी फलों का अर्पण; दीप अर्पणम् अर्थात् प्रकाश का अर्पण; नैवेद्य अर्पणम् अर्थात् भोजन का अर्पण; नमस्कार अर्पणम्, नमन का अर्पण; मन्त्र अर्पणम्, पावन मन्त्रों का अर्पण। इसी प्रकार, और भी बहुत कुछ। अर्पण करने के कितने तरीक़े हैं।

इन सभी पावन अर्पणों का केन्द्र है, हमारी वह अन्तर-स्थिति, हमारा वह अन्तर-भाव जो कि अर्पण को सच्चा अर्थ प्रदान करता है, जो अर्पण करने के पीछे निहित प्रेरणा है और जिससे अर्पण शक्ति से व्याप्त होता है। अर्पण का अर्थ है, भगवान के प्रति, अपने श्रीगुरु के प्रति जिनसे हमें प्रेम है और जिनमें हमें विश्वास है, उनके प्रति अपना सर्वश्रेष्ठ अर्पित करना। देने की हमारी सर्वोच्च क्षमता की अभिव्यक्ति है, अर्पण जिसमें हम देने व पाने के नैसर्गिक चक्रों का एक भाग बन जाते हैं।

ऋग्वेद सिखाता है कि यह ब्रह्माण्ड अर्पण से ही अपने स्थान पर टिका है; अर्पण के माध्यम से ही इस ब्रह्माण्ड में दैवी नियम या विधान का प्राकट्य होता है और इसीसे वह बना रहता है, इस दैवी नियम को 'ऋत' कहा जाता है। हम सृष्टि के प्रत्येक स्तर पर इसे देख सकते हैं—इस पृथ्वी ग्रह से लेकर सूक्ष्म लोकों व अणु-परमाणुओं के स्तर तक।

उदाहरण के लिए, एक बीजकोश से नवजीवन का अंकुर तभी फूटता है जब . . . जब क्या? जब वह अपने बीजों को उस धरती के प्रति अर्पित कर देता है जिसमें से वह उपजा था। आकाश के द्वार खुलते हैं और उससे सागरों, नदियों, सरोवरों और झरनों को अपना जल प्राप्त होता है। और फिर, वाष्प द्वारा बादल बनकर वे पुनः स्वयं को आकाश के प्रति अर्पित कर देते हैं।

अनवरत रूप से, अटल रूप से देने और पाने के ये नैसर्गिक चक्र चलते रहते हैं। मानव होने के नाते—पृथ्वी की प्रचुरता के उपभोक्ता होने के नाते भी और साथ ही इसके कुशलक्षेम के संरक्षक होने के नाते तथा स्वयं भी प्रकृति का एक भाग होने के नाते, हम यह निर्णय ले सकते हैं कि हम देने और पाने के इन नैसर्गिक चक्रों के साथ सामंजस्य में रहें।

इसी जागरूकता के साथ, इसी समझ के साथ, इस संसार में अपने स्थान की आनन्दभरी स्वीकृति और उसके प्रति अपनी वचनबद्धता के साथ, हम अपने श्रीगुरु का वन्दन-पूजन करते हैं।

***

हम स्मरण करते हैं,

अनुग्रह का अर्थात् श्रीगुरु की कृपा का,
कायाकल्प का अर्थात् अपनी सम्पूर्ण सत्ता के रूपान्तरण का,
स्वतन्त्रता का अर्थात् उस स्वतन्त्रता का जिसे हम इस रूपान्तरण द्वारा पुनः पा लेते हैं।
गुरुभक्ति का अर्थात् श्रीगुरु के प्रति उस भक्तिभाव का जो हमारे हृदय के निर्झर से उदित होता है, और
हम स्मरण करते हैं, अर्पण का।

हम अपने श्रीगुरु का वन्दन-पूजन करते हैं।

हर बार जब मैं 'सद्गुरुनाथ महाराज की जय' कहता हूँ, तो मैं महसूस करता हूँ कि मैं श्रीगुरुमाई का, अपनी श्रीगुरु का वन्दन-पूजन कर रहा हूँ, मैं अपने हृदय में उन्हें विराजमान देखता हूँ और उन्हें अपनी कृतज्ञता व प्रणाम अर्पित करता हूँ।

हिन्दी भाषा के ये शब्द, सिद्धयोग पथ पर अति महत्त्वपूर्ण और अनमोल हैं; वे व्यक्त करते हैं, श्रीसद्‌गुरु की जयजयकार हो!

अभी, आइए हम सब—महान स्वतन्त्रता और आनन्द के साथ—ये शब्द गाकर अपने परमप्रिय श्रीगुरु का वन्दन-पूजन करते हैं—सद्‌गुरुनाथ महाराज की जय!

© २०२१ एस. वाय. डी. ए. फ़ाउन्डेशन®। सर्वाधिकार सुरक्षित।